अध्याय–3
राजस्थानी लघुचित्र शैलियाँ

भारतीय कला विश्व की कला धरोहर में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अजंता–ऐलोरा की समृद्ध भित्ति चित्रण परम्परा एवं मूर्तन की शास्त्रीयता हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्मों व सम्प्रदायों का प्रभाव लिए मध्यकालीन कलाओं के विकास का आधार बनी। मध्यकालीन कला परम्परा मंदिर निर्माण व मूर्तन के साथ–साथ चित्रण का लघु रूप पाल, अपभ्रंश (जैन), राजस्थानी, मुग़ल एवं पहाड़ी शैलियों के नाम से स्थापित हुआ। इसी चित्रण शैली ने अजंता की वैभवशाली कला परम्परा को कालान्तर में शाश्वतता प्रदान कर भारतीय कला गौरव को ईसा पूर्व दूसरी सदी से वर्तमान तक सुरक्षित रखा है।

उद्भव और विकास :–

प्राचीन भारतीय चित्रण परम्परा का लघु रूप में निर्वाह करने वाली राजस्थानी चित्रकला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसके नामकरण एवं उद्भव स्थान को लेकर विद्वानों ने मतभेद प्रकट किये हैं। लेकिन उत्तरोत्तर शोध अध्ययनों, प्रकाशित पुस्तकों एवं ऐतिहासिक तथ्यपरक प्रमाणों के आधार पर राजस्थानी शैली का उद्भव एवं विकास 17वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य निश्चित किया गया, किन्तु इससे पूर्व के इतिहास पर विद्वान एक मत नहीं हैं।

लघु चित्रण परम्परा को सर्वप्रथम कला मर्मज्ञ डॉ. आनन्द कैटिश कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक ''राजपूत पेंटिंग (1916 ई) में रेखांकित किया। डॉ. स्वामी ने अर्वाचीन भारतीय चित्रकला के प्रमुख दो वर्ग माने– (1) राजपूत शैली (2) मुग़ल शैली। चूंकि राजपूताना की सीमाओं का विस्तार गुजरात से बुन्देलखण्ड तक और दूसरी ओर हिमालय की तलहटी की पहाड़ी रियासतों से मालवा के मैदानी क्षेत्रों तक था। इस क्षेत्रीय विस्तार के कारण डॉ. ए. के. कुमारस्वामी ने इस शैली को राजपूत शैली के नाम से सम्बोधित किया जो तर्कसंगत जान पड़ता है लेकिन कालान्तर में बेसिल ग्रे, डॉ. हरमेन ग्वेट्स, ओ. सी. गांगुली, रायकृष्ण दास, कुंवर संग्रामसिंह, मोतीचंद्र खजांची, कार्ल खण्डालवाला आदि द्वारा प्रस्तुत शोध पत्रों, ऐतिहासिक तथ्यपरक कला साक्ष्यों एवं पुस्तकों के आधार पर राजपूत शैली की विभिन्न शैलियाँ एवं उपशैलियाँ प्रकाश में आयी। उक्त प्रमाणों एवं कला साक्ष्यों के आधार पर राजपूत शैली को दो मुख्य शैलियों – राजस्थानी चित्रशैली एवं पहाड़ी चित्र शैली के नाम से पुकारा जाने लगा।

स्वतंत्रता के पश्चात राजपूताना ने 'राजस्थान' के नाम से अपनी पहचान कायम की, जिसका उल्लेख हमें 'कर्नल टॉड' ने अपनी पुस्तक ''एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटिज ऑफ राजस्थान'' 1829 ई. में 'रायथान' के नाम से सर्व प्रथम किया, जो कालान्तर में राजस्थान कहलाया। अतः राजस्थानी चित्रकला का तात्पर्य इसी प्रदेश में पल्लवित एवं पोषित कला परम्परा से है।

भारतीय इतिहास के अध्ययन एवं विद्वानों द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि पूर्व मध्यकाल अर्थात 7वीं सदी से 12वीं सदी का समय राजस्थान के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण रहा। विशेषकर यह समय साहित्य एवं कला के उत्थान का रहा। उपलब्ध प्राचीनतम प्रमाणों में राजस्थान में ही चित्रित ताड़पत्रिय ग्रंथ ''श्रावण प्रतिक्रमण चूर्णी'' (1260 ई.) आहड़ (उदयपुर) तथा देलवाड़ा से प्राप्त ''सुपासनाहचरियम'' (1422–23ई.) नामक सचित्र ग्रंथ राजस्थानी चित्रकला की आरम्भिक अवस्था को दर्शाता है जिन पर जैन एवं गुजरात

शैली का पूर्ण प्रभाव है। लेकिन इसके पश्चात मिले सचित्र ग्रन्थों जैसे 1426 ई. का कल्पसूत्र, 1451 ई. का बसंत विलास पटचित्र, 1450 ई. का गीत गोविन्द और बाल गोपाल स्तुति प्रमुख हैं, जिनसे राजस्थान शैली के बीजांकुर स्पष्ट दृष्टव्य हैं।

7वीं सदी से 15वीं सदी तक जैन तथा अजैन ग्रंथों को आधार बनाकर लघुचित्रों का व्यापक रूप प्रादेशिक मौलिकता और शास्त्रीय कला तत्त्वों की सामंजस्यपूर्ण सिद्धान्तों के अनुरूप एक नवीन रूप में राजस्थानी शैली में मुखरित हुआ। (12वीं सदी से 15वीं सदी के) मध्यकालीन सचित्र ग्रंथों जैसे – 1540 ई. में चित्रित आदिपुराण, मेवाड़ से प्राप्त चौरपंचाशिखा (1598 ई.), गीत गोविन्द(1610 ई.), 1540 ई. की महापुराण, 15वीं सदी का नियामतनामा, 1540 ई. की मृगावती, जोधपुर भागवत (1610 ई.) एवं कुंवर संग्राम सिंह के संग्रह से प्राप्त रागमाला के चित्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पूर्व के चित्रों में व्याप्त सवाचश्म चेहरे, गरूड़ सी नाक, परवल–फाँक सी बाहर निकली परली आँख, घुमावदार लम्बी ऐठनदार हस्त मुद्राएँ, अधिक उभरा हुआ वक्ष स्थल, अतिभंगीय मुद्राएँ, अकड़न युक्त आसन और प्रतीकात्मक प्रकृति अंकन आदि अपभ्रंशीय रूप 16वी सदी के मध्य तक स्थानीय विशेषताओं से युक्त होकर मेवाड़ शैली के रुप में मुखरित हुआ। चावण्ड से प्राप्त नसिरुद्दीन कृत 1605 ई. की रागमाला चित्र श्रृंखला ने राजस्थानी शैली के तथ्यात्मक आधार को सुदृढ़ता प्रदान की, जिससे यह सर्वमान्य हो गया कि राजस्थानी शैली का उद्भव स्थान मेदपाट (मेवाड़) ही रहा है।

16वीं सदी के पूर्वार्द्ध में गुजरात शैली से प्रभावित जिस समृद्धिशाली मेवाड़ शैली (प्रारम्भिक राजस्थानी शैली) के उदय से भारतीय चित्रकला में नवचेतना संचारित हुई, वह अपभ्रंश शैली, मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन एवं रीतिकालीन साहित्य का नवीन संस्करण था। बिहारी, मतिराम, देव, केशव आदि द्वारा रचित श्रृंगार प्रधान काव्य और सूर, मीरा, नानक, कबीर आदि द्वारा प्रवाहित भक्ति रस की धारा में राधा कृष्ण के लौकिक और अलौकिक स्वरुप को नवीन भाव–विधान और आलेखन की दृष्टि से राजस्थानी शैली ने एक नवीन परिवेश प्रदान किया। जिससे पूर्ववर्ती विषय वस्तु के साथ–साथ रागमाला, बारहमासा, ऋतु वर्णन, नायक–नायिका भेद आदि विषयों का उत्कृष्ट चित्रण हुआ।

शैलीगत वर्गीकरण

राजस्थानी चित्रकला का उद्भव एवं विकास अन्य शैलियों की भाँति न होकर क्षेत्रीय विविधताओं के साथ हुआ। राज्याश्रयों की अनेकता के कारण इसमें रुप वैविध्य का दिग्दर्शन होता है। राजस्थान में जितने भी प्राचीन नगर, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठान रहे, वहीं कलाएँ पनपी और विकसित हुई। धर्मपीठों, धर्माचार्यों, राज्याश्रयों, सामंतों आदि के धर्म एवं कला प्रेम के अतिरिक्त साहित्यकारों, कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों एवं शिल्पाचार्यों आदि के महत्वपूर्ण योगदान से राजस्थानी शैली अनेक रियासती उप शैलियों में विकसित हुई। 17वीं से 19वीं सदी के मध्य चरमोत्कर्ष को प्राप्त राजस्थानी शैली विभिन्न क्षेत्रीय उपशैलियों का सम्मिश्रित रुप है। राजस्थानी शैली को अध्ययन की दृष्टि से उनकी क्षेत्रीय विशेषताओं एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर मुख्यरुप से चार भागों में विभाजित किया गया।

(1) मेवाड़ शैली – उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़।

(2) मारवाड़ शैली – जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, नागौर, सिरोही।

(3) हाड़ौती शैली – कोटा, बूंदी, झालावाड़।

(4) ढूँढ़ाड़ शैली – जयपुर, उणियारा, अलवर, शेखावटी।

लेकिन कालान्तर में प्रत्येक शैली की मौलिकता पर विचार कर राजस्थानी शैली की प्रमुख शैलियों एवं उपशैलियों का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार कर बीकानेर, किशनगढ़, कोटा, बूंदी, अलवर आदि को स्वतंत्र शैली के रूप में स्थापित किया गया।

मेवाड़ शैली

राजस्थानी चित्रकला में मेवाड़ शैली का सर्वोपरि स्थान है। मेदपाट या मेवाड़ (उदयपुर) प्राचीन समय से ही कलाओं का प्रेरणा स्रोत रहा है इसलिए राजस्थानी चित्रकला के उद्भव और विकास तथा ऐतिहासिक मूल्यांकन में मेवाड़ शैली की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मेवाड़ का इतिहास वीरता, स्वतंत्रता व समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की रक्षा एवं धर्म के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध रहा है। विपत्तियों और बाधाओं से विचलित हुए बिना धर्म, कला व संस्कृति की रक्षार्थ मेवाड़ सदैव अग्रणी रहा है। वास्तु, साहित्य, संगीत, एवं कला के प्रति राणा कुंभा के असीम प्रेम के उदाहरण कुम्भलगढ़ के दुर्ग, राजप्रसादों के रुप में आज भी विद्यमान हैं राणा सांगा (1509–28 ई.) के मुग़लों के

साथ संघर्ष और उसके पश्चात चितौड़ के ध्वस्त होने के पश्चात महाराणा उदयसिंह (1536–72 ई.) द्वारा उदयपुर की स्थापना की। कालान्तर में महाराणा प्रताप द्वारा छप्पन की पहाड़ियों में चावण्ड को राजधानी बनाया। मुग़लों से सदैव संघर्षरत रहने के उपरान्त भी मेवाड़ के शासकों ने कलाओं को बराबर आश्रय प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप कुम्भलगढ़, चित्तौड़, उदयपुर एवं चावण्ड प्रारम्भिक मेवाड़ शैली के प्रमुख केन्द्र रहे।

17वीं सदी में अमरसिंह प्रथम (1597–1620 ई.) द्वारा मुग़लों की आंशिक अधीनता स्वीकारने के पश्चात मेवाड़ शैली पर मुगलिया प्रभाव परिलक्षित होने लगा। जो महाराणा कर्णसिंह और महाराणा जगतसिंह प्रथम तक अनवरत जारी रहा। मेवाड़ शैली के विकास में महाराणा प्रताप के समय में चावण्ड में चित्रित नसिरूद्दीन कृत 'रागमाला' चित्रमाला (1605 ई.) का विशेष महत्व है। जिसमें स्थानीय लोक कला तत्वों और रंगों का चटकीलापन उसकी स्थानीय पहचान को स्थापित करती है। इसी क्रम में जगतसिंह के समय का 'नायक–नायिका भेद' का युगल चित्र शैली की उन्नत परम्परा को रेखांकित करता है। 1640 ई. महाराणा जगतसिंह का समय मेवाड़ शैली का स्वर्णकाल रहा। इस समय जहाँगीर कालीन मुग़ल शैली का प्रभाव और वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव स्वरूप कृष्ण के प्रति अनुराग अपने चरम पर था। जहाँ तत्कालीन चित्रकारों के समक्ष कृष्ण की भाव–लीलाओं के साथ–साथ भागवत पुराण, गीत गोविन्द, सूर सागर, रामायण आदि ग्रंथ चित्रण के प्रमुख विषय रहे। 1648 ई. में शाहबुद्दीन द्वारा चित्रित भागवत पुराण के चार स्कंधों के 123 चित्र अत्यधिक महत्व के हैं जिनमें जोगिया पीला, लाल, हरा और नीला रंग विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त मनोहर द्वारा चित्रित 1649 ई. में रामायण, गीत गोविन्द और 1650–51 ई. में चित्रित सूर सागर नामक ग्रन्थ आदि जगतसिंह के कला प्रेम की पुष्टि करते हैं। इनके अतिरिक्त रीतिकालीन साहित्य से प्रभावित होकर शृंगार प्रधान विषयों के रूप में बारहमासा, ऋतुवर्णन, नायक नायिका भेद एवं रागमाला आदि विषयों पर आधारित सुन्दर चित्रण मेवाड़ शैली में अधिक हुआ है। जिसकी पुष्टि राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित रागमाला चित्रावली और केशव की रसिकप्रिया व रामचंद्रिका आदि ग्रन्थों के आधार पर होती है।

जगतसिंह के समय की मेवाड़ शैली की समृद्ध परम्परा ने राजसिंह के शासन काल में उत्कर्ष को प्राप्त किया। प्रसिद्ध चित्रकार शाहबुद्दीन कृत 'भ्रमरगीत' 1655 ई, नामक चित्रित ग्रंथ इस समय की विशेष उपलब्धि थी। यह वह समय था जब औरंगजेब की हिन्दु विरोधी नीति चरम पर थी। इसी दौरान मुग़ल आक्रमण की परवाह किये बिना महाराणा राजसिंह ने 1670 ई. में मेवाड़ के सिहाड़ नामक गांव में गोवर्धन से पधारे श्रीनाथ जी के विग्रह को स्थापित कर मेवाड़ की धर्म रक्षा परम्परा को बनाये रखा।

मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गी परम्परा की स्थापना से मेवाड़ अंचल में कृष्ण का स्वरूप निखरकर सामने आया। ज्ञातव्य है कि पुष्टिमार्गी परम्परा में चित्र सेवा और हवेली संगीत परम्परा एक मुख्य अनुग्रह मार्ग रहा है। जिसके फलस्वरूप श्री नाथ जी के विग्रह के साथ मथुरा और गोवर्धन से अनेक धर्मनिष्ठ चित्रकार और संगीतज्ञ भी आये। उन्होंने मेवाड़ शैली से सामंजस्य स्थापित कर एक नवीन किंतु पूर्णतया कृष्ण समर्पित नाथद्वारा शैली का प्रादुर्भाव किया, जो आगे चलकर मेवाड़ की उपशैली के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस शैली के चित्रों की विषय वस्तु के रूप में श्री नाथ जी के प्राकट्य एवं लीला–भाव सम्बंधित असंख्य चित्र कागज़ और कपड़े पर बनने लगे। उनमें भी श्री नाथ जी की प्रतिमा के पीछे लगने वाले कपड़े पर बने चित्र 'पिछवई चित्र' कहलाये। जो अपनी मौलिकता के कारण देश–विदेश में विशेष ख्याति प्राप्त हैं।

महाराणा जगतसिंह एवं राजसिंह के समय में अपने उत्कर्ष को प्राप्त मेवाड़ शैली पर परवर्ती शासकों जैसे – महाराणा जयसिंह, अमरसिंह द्वितीय संग्राम सिंह द्वितीय आदि के समय

चित्र संख्या–1 पिछवाइ चित्रण

में मुग़ल प्रभाव पूर्णतया झलकने लगा। जो हमें संग्राम सिंह द्वितीय के समय चित्रित 'बिहारी सतसई' (1717 ई.) में स्पष्ट परिलक्षित होता है। मेवाड़ शैली का यह मिश्रित स्वरूप राजदरबारों, स्थानीय रियासतों, वैष्णव पीठों में 19वीं सदी तक चलता रहा। जो आज भी यह क्रम श्री नाथ जी की सेवा में और स्वतंत्र रूप से अनवरत जारी है लेकिन व्यावसायिक दृष्टिकोण ने इसकी मौलिकता को अवश्य प्रभावित किया है।(चित्र सं. 1)

विशेषताएँ :–

1. प्रारम्भिक मेवाड़ शैली पर अपभ्रंश शैली (गुजरात– मालवा) का प्रभाव दृष्टव्य है, जो स्थानीय लोक शैली से मिलकर रंगों के चटकपन, प्रकृति की अलंकारिक रूप–सृजना एवं मोटे रेखांकन से युक्त देशज प्रभाव लिए प्रकट हुई।

2. 17वीं सदी के चित्रों में रंगों का सूफियापन, छाया–प्रकाश एवं चेहरे की सौष्ठवता उभरी। पुरूष आकृति गठीली मूछों युक्त, उभरा ललाट, विशाल नैत्र तथा सुन्दर पगड़ी से सुशोभित चित्रित किया गया। वहीं नारी आकृति छोटा कद, कसा हुआ वक्ष स्थल, मीनाकार नयन, छोटी चिबुक और आभूषणों एवं फुदनों से सजी लम्बी वेणी युक्त राजस्थानी परिधानों में चित्रित किया गया है।

3. मेवाड़ शैली में आलेखन स्थान को कथानक के अनुरूप कई भागों में विभक्त कर चित्र को संयोजित किया गया। चित्र में एक खण्ड में श्रृंगारिक नायिका है तो दूसरे खण्ड में वासक सज्जा नायिका का चित्र सृजित है वहीं चित्र के तृतीय खण्ड में परिचारिकाओं से घिरी नायिका चित्रित है। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड अपने आप में स्वतंत्र संयोजन है लेकिन सभी खण्ड मिलकर चित्र को एक पूर्ण कृति का स्वरूप देते हैं।

4. हाशिये विशेष रूप से स्थानीय प्रभाव लिए लाल–हिंगुल तथा सिंदूरी रंगों से युक्त बनाये गये। कालान्तर में मुग़ल प्रभाव के कारण अलंकरण युक्त बने।

5. मेवाड़ शैली में चित्रित विषयों में भागवत पुराण, गीत गोविन्द, सूर सागर, बिहारी सतसई, रसिकप्रिया, लौरचंदा, रामायण, कृष्ण–लीलाओं के अलावा रागमाला, बारहमासा, ऋतुवर्णन, नायक–नायिका भेद और लोक–कथाओं का चित्रण प्रमुख विषय रहे। 18वीं सदी के अंत तक श्री नाथ जी को विषय बनाकर बहुलता से चित्र बने। संक्षेप में बाल कृष्ण, गोपाल कृष्ण और श्रृंगारी मदन–मोहन का चित्रण मेवाड़ शैली की प्रमुख देन है। मूलतः सौन्दर्यानुभूति ही मेवाड़ शैली का मुख्य ध्येय रहा है।

6. मेवाड़ शैली के प्रारम्भिक चित्रों की पृष्ठभूमि में लोक प्रभाव लिए पर्देनुमा सपाट वास्तु और वनस्पति अंकित की गई, लेकिन कालान्तर में अन्तराल गुण का समावेश हुआ जहाँ चित्रों की पृष्ठभूमि में स्थानीय प्रभाव लिए सफेद वास्तु एवं क्षेत्रीय वनस्पति के रूप में आम, कदली युक्त सघन वन संपदा के चित्रण के साथ पशु–पक्षियों में हाथी, शेर, हिरण, बंदर, मयूर, शुक, सारस, हंस, कोयल, चकोर आदि का चित्रण प्रमुखता से हुआ। 18वी सदी में मुग़ल प्रभाव के कारण पृष्ठभूमि में रात्रि कालीन दृश्यों में चांद और तारों से आच्छादित आकाश का भव्य चित्रण देखने को मिलता है।

7. मेवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकारों को मनोहर, शाहबुद्दीन, नासिरूद्दीन, मेरू, कृपाराम, रामप्रताप, नयनचन्द्र जीवा, अमरा, शिवदयाल और रघुनाथ आदि प्रमुख रहे।

18वीं सदी के अंत में मेवाड़ शैली अपनी चारूता एवं भव्यता मुग़ल एवं पाश्चात्य शैली के प्रभाव स्वरूप खोने लगी।

मारवाड़ शैली

राठौड़ राजवंशी राव जोधा द्वारा स्थापित राज्य और वहाँ के विभिन्न ठिकानों में पल्लवित होने वाली चित्र शैली मारवाड़ या जोधपुर शैली के नाम से जानी जाती है। यह शैली भी मेवाड़ शैली की भाँति अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है। मेवाड़ के अनुरूप मरूप्रदेश में भी भारतीय चित्र एवं मूर्तन की वैभवशाली विरासत के जीवंत उदाहरण प्रतिहारों की राजधानी मण्डोर के द्वारस्थलों, राजप्रासादों एवं मंदिरों में देखने को मिलता है। तिब्बती यात्री लामा तारानाथ द्वारा 7वीं सदी में मरूप्रदेश में श्रृंगधर नामक चित्रकार का उल्लेख मारवाड़ शैली की चित्रण परम्परा की प्राचीनता को प्रमाणित करती है। जैन धर्म के अत्यधिक प्रभाव एवं तात्कालिक व्यापारिक केन्द्र होने के कारण 10वीं से 15वीं सदी के बीच चित्रित अनेक ताड़पत्रीय जैन ग्रन्थों के द्वारा मारवाड़ शैली की कलात्मक पृष्ठभूमि प्रमाणित होती है। मारवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा एवं कलात्मक परिवेश को नवीन धरातल प्रदान करने का श्रेय राव मालदेव को है। मालदेव ने अपनी दूरदर्शिता, वीरता, विद्वत्ता के द्वारा विभिन्न रियासतों जैसे घाणेराव, सिरोही, नागौर, नाडोल, पाली, सोजत, जालोर, पोकरण आदि को मिला कर स्वतंत्र मारवाड़

राज्य की नींव रखी। जो कई सदियों तक राठौड़ राजवंश के अधीन रहे।

मारवाड़ शैली के प्रारम्भिक चित्र साक्ष्यों में बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित 1591 ई. का 'उत्तराध्ययन सूत्र' ग्रंथ एवं नाडौल, पाली, जालोर के जैन स्थलों एवं जोधपुर पुस्तक प्रकाशन जोधपुर और जैसलमेर के भण्डारों से प्राप्त 'कल्पसूत्र' और अन्य ग्रन्थों की प्रतिलिपियों की उपलब्धता मारवाड़ शैली पर जैन–गुजरात शैली के प्रभाव को रेखांकित करती है लेकिन साथ में यह भी स्पष्ट होता है कि मारवाड़ अपने समय का महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र भी रहा होगा। कुंवर संग्राम सिंह के संग्रह में 1623 ई. की बनी रागमाला चित्र शृंखला के कुछ चित्रों को मारवाड़ की प्रारम्भिक अवस्था के प्रामाणिक साक्ष्य माना जाता है।

मारवाड़ शैली का विकास समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप हुआ। अपभ्रंश और मुग़ल प्रभाव से युक्त मारवाड़ शैली अपनी मौलिकता के लिए उल्लेखनीय है। महाराजा सूरसिंह के समय (1545–1620 ई.) मारवाड़ शैली ने एक निश्चित रूप ग्रहण किया। राजा सूरसिंह कालीन अनेक चित्र बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है। उनके समय के सचित्र ग्रंथों में जोधपुर भागवत 1610 ई. और सूर–सागर के पद रसिक प्रिया का चित्रण एवं ढोला–मारू के चित्र मरूप्रदेशीय रंगों की चटकता एवं वस्त्राभूषणों का अभिजात्य रूप भौतिक चारूता को परिलक्षित करते हैं।

राजा जसवंत सिंह एक विद्वान एवं कला प्रेमी थे। उनके समय में मारवाड़ वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा और कृष्ण चरित्र को आधार बनाकर अधिकाधिक चित्रण हुआ। जसवंतसिंह के पश्चात मारवाड़ राज्य मुग़लों से सदैव संघर्षरत रहा। कालान्तर में अजीतसिंह के समय(1724 ई.) यह पुनः अपने वैभव को प्राप्त हुआ। अजीत सिंह के पश्चात उनके पुत्र अभयसिंह (1724–48 ई.) और बढ़त सिंह (1624–52 ई.) के समय क्रमशः जोधपुर, नागौर में चित्रकला के रुप में भित्ति चित्रण एवं पोथी चित्रण परम्परा में राधा–कृष्ण और प्रेम आख्यानों में ढोला–मारू, उजळा–जेठवा व अंतःपुर की स्त्रियों के अनेक सुन्दर चित्रों की रचना हुई। यह परम्परा महाराजा विजयसिंह से भीमसिंह तक अर्थात 1803 ई. तक यथावत चलती रही। महाराजा मानसिंह के राज्यारोहरण (1803–43 ई.) के पश्चात

चित्र संख्या–2 कृष्ण पूजा

मारवाड़ शैली में एक नवीन विषय वस्तु के रूप में 'नाथ पंथ' सम्प्रदाय से सम्बन्धित चित्रों की भी रचना होने लगी। मानसिंह के पश्चात तख्तसिंह (1843–75 ई.) ने पुनः कृष्ण विषयक चित्रों का निर्माण करवाया। उनके समय के तख्त विलास, तीजां मांजीसा के मन्दिर आदि में सुन्दर भित्ति चित्र जोधपुर दुर्ग में विद्यमान हैं। लेकिन 18वीं सदी से मुग़ल प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा जिसकी पूर्ण परिणती महाराजा जसवंत सिंह द्वितीय (1873–95 ई.) के समय के चित्रों में देखी जा सकती है। चित्र सं. 2

19वीं सदी के मध्य तक अन्य राजस्थानी चित्र शैलियों की भाँति मारवाड़ शैली भी पाश्चात्य कला प्रभाव में अपनी मौलिकता से विमुख हो गई। लेकिन मारवाड़ शैली में जोधपुर के अतिरिक्त बीकानेर एवं किशनगढ़ राज्य प्रमुख कला केन्द्र प्रभावशाली ढ़ंग से उभरे। जिनका अध्ययन हम स्वतंत्र शैलियों के रुप में आगे करेंगे।

विशेषताएँ

मेवाड़ और अपभ्रंश शैली से आंशिक प्रभावित मारवाड़ शैली अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण अलग स्थान रखती है।

1. मारवाड़ शैली में पुरूष आकृति लम्बी कदकाठी युक्त, शौर्य

से परिपूर्ण मुखमण्डल घनी दाढ़ी मूँछों युक्त अरूणाभ विशाल नेत्र, लम्बी नासिका एवं शिखरनुमा पगड़ियाँ विशेष दर्शनीय हैं। कालान्तर में मुगलिया प्रभाव वस्त्राभूषणों में दृष्टिगोचर होता है।

2. नारी आकृति लम्बी छरहरी कदकाठी और आभूषणों से युक्त सुन्दर मुख मण्डल, उभरा ललाट, खंजनाकृति नेत्र, कपोलों तक झूलती सर्पाकार अलकावलियां और अंग–प्रत्यंगों का अनूठा गठन ठेठ राजस्थानी लहंगा, तंग कंचुकी और पारदर्शी ओढ़नी में झांकती लाल फुदनों से युक्त वेणी स्त्री देह को सौष्ठव प्रदान करती है। कालान्तर में मुग़ल प्रभाव स्वरूप नारी आकृतियों को धराकृति लम्बे फ्रिलदार जामें पहने चित्रित किया गया।

3. मारवाड़ी शैली के चित्रों में प्रायः गेरूआ पीला रंग अधिकता से प्रयुक्त हुआ। हाशिये लाल रंग से चित्रित कर उन्हें पीले रंग से सीमांकित किया गया है। दक्खिन शैली के आंशिक प्रभाव से पृष्ठभूमि में हरे रंग की झलक उत्तरकालीन चित्रों में देखने को मिलती है।

4. पृष्ठभूमि में सफेद रंग के वास्तु का अंकन और मरूस्थलीय प्रभाव लिए वनस्पति चित्रतल में कहीं–कहीं अंकित की गई। पशु–पक्षियों में ऊँट, घोड़े, कुत्ते, खरगोश, हिरण, मयूर, कौवे, तीतर, बाज, बटर आदि का चित्रण प्रधानता लिए हुए है।

5. विषय वस्तु में मारवाड़ शैली राजस्थान की अन्य चित्र शैलियों की अपेक्षा अधिक समसामयिक रही। अस्तु यहाँ परम्परागत विषयवस्तु जैसे दुर्गा सप्तशती, रामायण, शिवपुराण, कृष्ण विषयक चित्र और रागमाला, ऋतुवर्णन, कामसूत्र, अन्तःपुर के चित्र, दरबारी सभी हैं। नायक–नायिका भेद, बारहमासा आदि के चित्रण के अतिरिक्त प्रेम आख्यानों का प्रभावी चित्रण हमें ढोला–मारू, मूमलदे–निहालदे, उजळा–जेठवा, रानी रूपमति–बाज बहादुर के चित्रों और लोक कथाओं में पाबूजी, हडबूजी, नाथपंथ आदि विषयों के रूप में जनसामान्य के जीवन सम्बन्धित चित्रण मारवाड़ शैली की निजी विशेषताएं हैं।

6. मारवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकारों में भाटी जाति के लोग संबद्ध रहे जिनमें भाटी किशनदास, भाटी शिवदास भाटी देवदास, भाटी वीरजी, नारायण दास, छज्जु भाटी, शंकरा भभूता जीतमल, दाना, फतेह मौहम्मद, गोपी आदि का योगदान उल्लेखनीय रहा।

बीकानेर :—

बीकानेर की स्थापना राव बीका जी ने की थी। मारवाड़ का ही एक अंग होने के कारण बीकानेर की कलात्मक धरोहर मारवाड़ स्कूल की ही परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी गिनी जाती है। बीकानेर राज्य अनेक बाह्य प्रभावों के उपरांत भी कलात्मक दृष्टि से अपना मौलिक स्थान रखता है। अन्य राजस्थानी शैलियों की भांति बीकानेर की चित्रकला का भी प्रादुर्भाव 16वीं शताब्दी के अंत में माना जाता है। बीकानेर राज्य का मुग़ल दरबार से गहन सम्बन्ध होने के कारण मुग़ल शैली की सभी विशेषताऐ बीकानेर की प्रारंभिक चित्रकला में दिखाई देती हैं। बीकानेर के राजा अधिकतर दक्षिणी मोर्चो पर मुग़लों के गर्वनर रहे, अतः दक्षिण शैली का प्रभाव बीकानेर पर सर्वाधिक है। बीकानेर शैली के चित्रों में कलाकार का नाम, उसके पिता का नाम और संवत् उपलब्ध होता है। महाराजा राय सिंह ने बीकानेर शैली के विकास में बहुत योगदान दिया। प्रसिद्ध उस्ता परिवार औरंगजेब के समय में महाराजा कर्णसिंह और अनूप सिंह के दरबार में बीकानेर आया। महाराजा कर्ण सिंह ने अली रजा नाम के मुग़ल चित्रकार को अपना प्रिय चित्रकार बनाया

चित्र संख्या–3 रानी रुपमती बाज बहादुर

था। अनूपसिंह के काल में जो चित्र तैयार हुए उनमें विशुद्ध बीकानेरी शैली के दर्शन होते हैं। उनके दरबारी मुसब्बिर रुक्नुद्दीन का योगदान महत्वपूर्ण है। उसने सैकड़ों चित्र बनाए। केशव की रसिकप्रिया तथा बारहमासा के चित्र महत्वपूर्ण हैं। रुक्नुद्दीन का पूरा परिवार बीकानेर की कला के लिए समर्पित हो गया। उसके बेटे साहबदीन ने भागवत पुराण के चित्र बनाये तथा उसके पोते कायम ने 18 वीं सदी के प्रारंभ में बीकानेर शैली का चित्रण किया। महाराजा अनूप सिंह के समय में मथेरण परिवार के मुन्नालाल, मुकुन्द, चन्दूलाल आदि ने भी बीकानेर शैली के विकास में विशेष योगदान दिया। मथेरण परिवार तथा उस्ता परिवार के कलाकारों के कला–प्रेमी राजा अनूपसिंह के युग में बीकानेर शैली को चर्मोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। मुग़लों के पतन के कारण बीकानेर शैली मुग़ल शैली से मुक्त हो गई तथा जयपुर, बूंदी, मेवाड़, पहाड़ी आदि शैलियों का प्रभाव बीकानेर शैली पर आया। भित्ति–चित्रों की राजस्थानी परंपरा को भी बीकानेर शैली ने आगे बढ़ाया। बीकानेर किले के महल, लालगढ़ पैलेस, अनेक छतरियाँ आदि का भित्ति–चित्रण इस ष्टि से महत्वपूर्ण है। ऊँट की खाल पर चित्रण भी बीकानेर की निजी विशेषता रही है। इस परंपरा को उस्ता कलाकार आज भी निभा रहे हैं।

बीकानेर चित्र शैली की मुख्य विषय– वस्तु भागवत पुराण, माधवानल कामकेदला, चौर–पंचासिका, चावंड़ की रागमाला, रसिक प्रिया, बारहमासा, रामायण, देवी माहात्म्य, दरबार, आखेट, श्रृंगारिक विषय एवं व्यक्ति चित्रण रही हैं। इसके अतिरिक्त नारी–शिबिका, शाल भंजिका, नायिका श्रृंगार, पुरुषक्रीड़ा, फुलझड़ियां लिए हुए स्त्रियां, दम्पति द्वारा चौपड़ का खेल आदि विषयों का प्रचुरता से अंकन हुआ है। इस शैली में आकाश को सुनहरे छल्लों से युक्त मेघाच्छादित दिखाया गया है। बीकानेर शैली की मानवतियाँ जोधपुर की ही परंपरा पर लंबे कद की है। चेहरा भूरा, मूछों से ढका हुआ, भारी मांसल शरीर, विशाल वक्ष पर मोतियों की कंठी, नीचे जामा, कमर में कटार दुपट्टे में रखी बनाई गई है। नारी आकृितयाँ भी जोधपुर परंपरा पर लम्बी छरहरी नायिकाएँ, खंजन पक्षी से तीखे नेत्र, तंग कंचुकी, घेरदार घाघरे, कसा हुआ शरीर एवं आलंकारिक आभूषणों से सुसज्जित हैं। लंबी इकहरी नायिकाएँ, नारियल के वृक्षों का दक्कनी अंकन, उछलते फव्वारों, हरे रंग का प्रयोग विशेष दर्शनीय है। बीकानेर शैली में रेखाओं की गत्यात्मकता, कोमलांकन एवं बारीक रेखांकन दर्शनीय है। रेखाओं का संयोजन प्रभावशाली है। चटक रंगों के स्थान पर यहाँ कोमल रंगों का प्रयोग हुआ है। लाल, बैगनी, जामुनी, सलेटी, बादामी रंगों का अधिकाधिक प्रयोग इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस शैली के चित्रों में लघु चित्र एवं भित्ति चित्र दोनों का समान अंकन हुआ है। बीकानेर शैली के चित्रों की मुख्य विषय–वस्तु महाभारत, रामायण, कृष्णलीला एवं नायक–नायिका भेद हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ रसिकप्रिया, रागमाला, व्यक्ति चित्रण, शिकार का दृश्य, शाल–भंजिका, भागवत् पुराण एवं राजस्थानी लोक कथाओं का अंकन यहाँ के चित्रों की मुख्य विषय–वस्तु थी। (चित्र सं. 3) बीकानेर चित्र शैली के प्रमुख चित्रकारों में मुन्नालाल, मुकुन्द, रामकिशन, जयकिशन, मथेरण, चन्दूलाल का नाम उल्लेखनीय है। बीकानेर शैली के चित्रण में उस्ता परिवार के चित्रकारों उस्ता कायम, कासिम, अबुहमीद, शाह मुहम्मद, अहमद अली एवं शाहबुद्दीन आदि प्रमुख चित्रकार थे। इन्होंने रसिकप्रिया, बारहमासा, राग–रागिनी श्णलीला, शिकार, महफिल तथा सामंती वैभव का चित्रण किया। यहाँ भवनों के गुम्बदों को विशेष रुप से चित्रित किया गया है। प्रति चित्रण में विशेष छल्लेदार बादलों, वर्षा काल में बिजली का अंकन एवं सारस युगल को सुन्दरता से चित्रित किया गया है। आकाश में नीली, सुनहरी एवं लाल आदि आभायुक्त वर्णिका का प्रयोग हुआ है। व्यक्ति चित्रों में टीलों का प्रतीकात्मक अंकन है। चित्रों की पृष्ठभूमि का अंकन कोमल एवं वातावरण के अनुसार परिप्रेक्ष्य का चित्रांकन किया गया है। शाल भंजिका चित्रों में वृक्षों एवं मानव आतियों में अधिक लोच व आकर्षण है। बीकानेर चित्र शैली बारीक रेखांकन, कोमल एवं गत्यात्मक रेखाओं, चटक एवं कोमल रंगों के समन्वय से राजस्थानी चित्रकला में अपना विशिष्ट स्थान एवं महत्व रखती है।

किशनगढ़ शैली :–

पहाड़ी कला में कांगड़ा शैली का जो स्थान है वही राजस्थानी कला में किशनगढ़ शैली का है। कांगड़ा के चितेरों ने जिस प्रकार नारी छवि का मनोरम अंकन कर अपनी कला को निखारा ठीक वैसा ही नारी का अनुपम सौन्दर्य किशनगढ़ शैली की महत्ता नारी चित्रण में निहित माधुर्य एवं भाव वैशिष्ट्य की दृष्टि से है। राधा–कृष्ण की मनोरम झाँकियां प्रस्तुत करने

चित्र संख्या–4 कृष्ण राधा

में तो यहाँ के कलाकारों ने कमाल किया है। स्वर्ग को भी विमुग्ध कर देने वाली कल्पना की ऐसी पार दृष्टि किशनगढ़ शैली की मौलिक देन है जहाँ राधा के रूप में मनमोहिनी नारी आकृति 'बणी–ठणी' के नाम से विश्व प्रसिद्ध है जो राजस्थानी शैली में नारी आकृति के काव्यपूर्ण भाव सौन्दर्य का सर्वोत्तम उदाहरण है। किशनगढ़ शैली को विशिष्टता प्रदान करने तथा इसकी मौलिकता को रेखांकित करते हुए इसे स्वतंत्र शैली के रूप में ख्यातिनाम करने का क्षेत्र कलामर्मज्ञ सर ऐरिक डिकिन्सन एवं डॉ. फैयाज अली को है। जिनके प्रयासों से वर्षों तक कपड़ भण्डार की गठरियों में बंद पड़ा रहा यह विलक्षण चित्र सौन्दर्य अचानक ही नाटकीय ढंग से 1943 ई. में उद्घाटित हुआ।

वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहे किशनगढ़ की स्थापना राजा किशनसिंह ने 1609 ई. में एक स्वतंत्र रियासत के रूप में की। जोधपुर राज्य एवं मुग़लों से मैत्रीपूर्ण सम्बंधों के कारण किशनगढ़ को राजसी वैभव और कलात्मक जीवन विरासत की में मिली। मारवाड़ शैली की उन्नत शाखा किशनगढ़ शैली एक सदी उपरांत राजा सावंत सिंह के समय में अपने चरम पर पहुँची। अपनी मौलिकता एवं निजी विशेषताओं के कारण यह शैली राजस्थानी शैलियों में सर्वोपरि स्थान रखती है। किशनसिंह और उनके पुत्र सहस्रमल के समय से ही किशनगढ़ वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्रों में से था। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए पीढ़ी के पांचवें राजा रूपसिंह ने राधा–कृष्ण की भक्ति को ही जीवन का साध्य माना। उनके पश्चात उनके पुत्र मानसिंह, जो स्वयं कवि एवं कला प्रेमी थे, ने कृष्ण अनुयायी होने के नाते कृष्ण विषयक चित्रों में रूचि दर्शायी। उनके समय के चित्रित प्रमाण कपड़ भण्डार किशनगढ़ में विद्यमान है। उनके पश्चात राजसिंह के काल में भी चित्रकला एवं साहित्य का व्यापक प्रसार–प्रचार हुआ। उनके समय के चिह्नित 33 ग्रंथ उनके कला प्रेम को प्रमाणित करते हैं।

1718 ई. में सावंत सिंह के राज्यारोहण के साथ ही किशनगढ़ शैली ने करवट बदली। बचपन से ही वल्लभ सम्प्रदायी परम्परा से संस्कारित सावंत सिंह कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके समय में राधा–कृष्ण सम्बन्धित लीला भावों के चित्र उनके कृष्ण अनुराग को परिलक्षित करते हैं। राज्य के वैभव के प्रति उदासीन होकर काव्य, संगीत एवं चित्रकला के द्वारा अपने को कृष्ण पर न्यौछावर कर दिया और वे नागरी दास के रूप में पहचाने जाने लगे। 18वीं सदी के मध्य तक बने चित्रों में राधा–कृष्ण के माधुर्य भाव को नवीन ढ़ंग से चित्रित किया

गया। उस नवीनता के आधार पर मूलतः कृष्ण भक्ति और दूसरी तरफ उनकी प्रेयसी 'बणी–ठणी' के प्रति आसक्ति भाव जो अपने अद्वितीय रूप सौन्दर्य के कारण तात्कालीन राधा के रूप में नारी चित्रों का मूलाधार बनी। नागरी दास और बणी–ठणी के प्रेम भाव को दरबारी चित्रकार निहालचन्द ने राधा–कृष्ण के रूप में चित्रित कर अमर कर दिया। चित्र सं. 4 किशनगढ़ शैली के इतिहास में सावंतसिंह एवं उनके दरबारी चित्रकार निहाल चंद का वही स्थान है जो कागड़ा शैली में राजा संसार चंद्र और उनके दरबारी चित्रकारों का था। कवि हृदय सावंत सिंह ''नागरी दास'' ने 1723–31 ई. के मध्य नागर सामुच्य, मनोरथ मंजरी, रसिक रत्नावली और बिहारी चंद्रिका नामक ग्रंथों की रचना कर कृष्ण काव्य के वैभव में विशेष योगदान दिया। उन्होंने ही 'बणी–ठणी' के रूप सौन्दर्य को राधा का प्रतीक मान कर काव्य और चित्रकला के माध्यम से अपने प्रेम व समर्पण को अभिव्यंजना प्रदान की। सावंत सिंह के समय के चित्रों में पुरूष एवं नारी आकृतियों का नयनाभिराम अंकन राजस्थानी शैली की अन्य शैलियों से सर्वथा भिन्न एवं मौलिक था। जो आगे चलकर पुरूष–नारी आकृति चित्रण का आदर्श बना। सावंतसिंह की बणी–ठणी के प्रति आसक्ति और कृष्ण प्रेम के चलते राज–काज में विरक्ति लेकर अपनी प्रेयसी के साथ 'राधा–माधव' लीला स्थली वृंदावन चले गये। जहाँ 1763 में बणी–ठणी और 1764 में नागरीदास देवलोक को गमन कर गये। आज भी दोनों की समाधियां एक दूसरे के समीप बनी हुई हैं।

किशनगढ़ शैली में सावंत सिंह के पश्चात हुये राजाओं में बहादुर सिंह, बिड़दसिंह, कल्याणसिंह आदि के शासन काल में कला का विकास अनवरत चलता रहा। इनके शासन काल के चित्रकारों में सीताराम, बदनसिंह, नानकराम, रामनाथ, सवाईराम और लाडलीदास प्रसिद्ध थे। 1820 ई. में लाडलीदास द्वारा चित्रित 'गीतगोविन्द' की प्रति उस समय के कला वैभव को रेखांकित करती है। क्योंकि इनके पश्चात किशनगढ़ शैली की अलौकिक छवि धीरे–धीरे विलीन होने लगी और 19वीं सदी के अंत तक पतनोन्मुख हो गयी।

विशेषताएँ :–

1. किशनगढ़ शैली धार्मिक जीवन की सात्विकता एवं भौतिक जीवन की चारूता के राग रंग का समायोजित भाव सौन्दर्य का पयार्य है, जो इस शैली की अपनी मौलिक विशेषता है। यह निजता इसे राजस्थानी कला की अन्य शैलियों से अलग वैशिष्ट्य प्रदान करती है। नर–नारी के अंग प्रत्यंगों का अलौकिक अंकन, प्रकृति का विराट रंगमंचीय प्रभाव, रंगों का मिश्रित प्रयोग और राधा–कृष्ण का भावमयी काव्यात्मक चित्रण इस शैली में विशेष महत्त्व रखता है।

2. शैली की पुरूषाकृति लम्बी छरहरी नीलवर्णी कायायुक्त, जटाजूट की भाँति ऊपर उठी मोतीयों से सुसज्जित श्वेत मूंगियां पगड़ी, समुन्नत ललाट, लम्बी नासिका, मधुर स्मित से युक्त हिगुली पतले अधर और खंजनाकृति कर्णवत खीचे अरूणाभ, नयन, नुकीली चिबुक, अजानु, भुजाएं, पतली सुकुमार अंगुलियों से युक्त मनोरम कृष्ण काया बदन पर झुलते मौहम्मदशाही पारदर्शी जामें में अति सुन्दर चित्रित की गई है।

3. नारी आकृति अंकन में नारी सुलभ लावण्य युक्त सौन्दर्य में गौरववर्ण, बांके काजल युक्त विशाल मोहक नयन, कपोलों तक आच्छादित पलकें, अर्द्धविकसित किंतु उन्नत खींचा हुआ वक्षस्थल, लहंगा, कंचुकी और पारदर्शी ओढ़नी में युक्त वस्त्राभूषणों युक्त कोमल काया का नयनाभिराम अंकन हुआ है। सुकुमार अंगुलियों में अर्द्ध विकसित कमल की कलियां लिए राधा के बहाने बणी ठणी के रूप यौवन को उजागर करती है। किशनगढ़ शैली में नारी का काव्य कल्पित रूप सौन्दर्य एवं माँसल यौवन के साथ रूपायित है।

4. पृष्ठभूमि में किशनगढ़ के प्राकृतिक परिवेश के अनुरूप झीलों, पहाड़ों, उपवनों एवं विभिन्न पशु–पक्षियों का अंकन है जिनमें मुख्यतः कमलपुष्पों से आच्छादित सरोवरों में जल क्रीड़ा करते जल मुर्गे, बतखें, सारस और तैरती नौकाओं में प्रेमालाप करते राधा–कृष्ण का अनोखा चित्रण है। वास्तु में उच्च अट्टालिकाएँ कुंजो से झांकती श्वेत मुंडेरें, फव्वारे, कदली वृक्ष और चांदनी रात में राधा–कृष्ण की क्रीड़ा, प्रातः कालीन एवं सांध्य कालीन बादलों का रंगीन चित्रण विशेषतः हुआ है।

5. विषयवस्तु के रूप में राधा–कृष्ण के लीलाभाव संबंधित विषयों एवं रीतिकालीन साहित्य में रसिकप्रिया, गीत गोविंद और भागवत पुराण नागर समुच्चय आदि का चित्रण अधिक हुआ। इनके अतिरिक्त वैभव–विलास और स्वच्छंद श्रृंगार के भाव चित्रों के मुख्य विषय रहे। अन्य शैलियों की भांति शिकार के दृश्य, उत्सव एवं दरबारी विषयों, शबीह चित्रों, अन्तःपुर के

चित्र एवं नायक—नायिका भेद के चित्रण अधिक बने हैं। किशनगढ शैली में उत्सव नौकाविहार और प्रकृति का विराट अंकन, श्रृंगारिक विषयों का चित्रण अधिकता से हुआ है। लेकिन रागमाला चित्रण इस शैली में नहीं मिलता।

6. किशनगढ़ शैली के प्रमुख चित्रकारों में सूर्यध्वज मूलराज, मौरध्वज निहालचंद, सीताराम, बदनसिंह, रामनाथ, नानक राम, सवाईराम, अमरू, लाडलीदास, सूरजमल आदि प्रमुख थे। जिन्होंने कालजयी किशनगढ़ शैली के चित्रों की रचना कर एक विलक्षण सौन्दर्य को व्यंजना प्रदान की।

बूंदी शैली :—

प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा से आविष्टित हाड़ा राजपूतों के राज्य बूंदी में पोषित चित्र शैली बूंदी शैली के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की सघन वन सम्पदा, प्राकृतिक वैभव पहाड़, सरोवर आदि सभी बूंदी के कलात्मक जीवन को प्रभावित करते आये हैं। 14वीं सदी के मध्य राव देवा द्वारा 1398 ई. में स्थापित बूंदी का कलात्मक इतिहास 16 वीं सदी में राव सुरजन से ही माना जाता है। राव सुरजन द्वारा मेवाड़ से सम्बन्ध विच्छेद करने एवं अकबर को रणथम्भौर का किला सौंपकर मुग़ल आधिपत्य की स्वीकारोक्ति बूंदी के इतिहास का महत्वपूर्ण घटनाक्रम रहा। इसके पश्चात मुग़लों के साथ बूंदी रियासत के सम्बन्ध आने वाले लम्बे समय तक मधुर एवं सुदृढ़ रहे।

बूंदी शैली के उद्भव के बारे में कोई निश्चित प्रमाण तो प्राप्त नहीं हुए किन्तु 18वीं सदी के मध्य में मेवाड़ से संबंध विच्छेद के उपरांत मुगलिया प्रभाव और वहाँ के क्षेत्रीय प्राकृतिक परिवेश से परिपूर्ण बूंदी शैली ने राज्याश्रय के द्वारा अपने वैभव को प्राप्त किया। बूंदी के राव रतनसिंह (1607—31 ई.) एवं उनके पुत्र राव छत्रशाल (1631—58 ई.) और पौत्र भावसिंह (1658—81 ई.) के द्वारा कलाकारों को राज्याश्रय के फलस्वरूप बूंदी शैली ने अपना एक निश्चित स्वरूप ग्रहण किया। राव रतन सिंह के समय के चित्रों में भारत कला भवन इलाहबाद में संग्रहित 'राग दीपक' का चित्र एवं नगर निगम संग्रहालय इलाहबाद में संग्रहित 'रागिनी भैरवी' का चित्र बूंदी शैली के प्रारम्भिक कला इतिहास के साक्ष्य हैं। इसके पश्चात राव भावसिंह के राज्याश्रय में मतिराम द्वारा 'ललिन ललाय' एवं 'रसराज' की रचना ने कला प्रेमियों को प्रभावित किया। कालान्तर में बूंदी शैली पर दक्खिन शैली के लक्षण दृष्टि गोचर होने लगे।

चित्र संख्या—5 रासलीला

18वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बूंदी शैली का विकास अधिक हुआ। इससे पूर्व के चित्रों पर मेवाड़ शैली का प्रभाव झलकता है लेकिन उसके पश्चात मुग़ल प्रभाव और मध्यकालीन रीति काव्य से प्रभावित बूंदी शैली के चित्र तकनीक एवं विषय वैविध्य की दृष्टि से उत्कृष्ट बन पड़े हैं। रंगों की चटकता एवं बहुलता, आकृतियों का शारीरिक गठन और प्राकृतिक वैभव ने बूंदी को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया। इस समय के चित्रों में रसराज पर आधारित नायक नायिक भेद, रागमाला बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन और कृष्ण लीलाओं का चित्रण बूंदी में अत्यधिक हुआ। राव छत्रशाल द्वारा निर्मित रंग महल के भित्ति चित्रण बूंदी शैली के जीवंत साक्ष्य हैं जो इस समय की समृद्ध कला परम्परा को प्रस्तुत करते हैं। (चित्र सं. 5)

राव उम्मेद सिंह के समय बूंदी शैली के चित्रों की पृष्ठभूमि में भवनों का अंकन प्राकृतिक विविधता, पशु पक्षियों तथा सतरंगे बादलों, जलाशयों एवं सघन वन सम्पदा का चित्रण बाहुल्य है। उत्तरकालीन बूंदी शैली के चित्रों में रात्रिकालीन दृश्यों एवं हरे रंग की प्रधानता और नायक—नायिका भेद विषयक चित्रों में नारी सौन्दर्य की तीव्रता तूलिका संचालन की स्निग्धता को परिलक्षित करती है। बूंदी शैली मुगलिया प्रभाव के उपरान्त भी अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रही। 19वीं सदी में अंग्रेजी शासन के दौरान कम्पनी शैली के प्रभाव का बूंदी शैली पर भी देखने को मिलता है।

विशेषताएँ :—

1. प्रारम्भिक बूंदी शैली में आकृति विन्यास मेवाड़ शैली के समरूप था लेकिन 17वीं सदी के उत्तरकाल के चित्रों में आकृतियां साधारणः लम्बी, इकहरी स्वतः स्फूर्त अंकित की गयी। स्त्री आकृतियों को अरूणाभ नेत्र, छोटी नासिका, गोल मुखाकृति छोटी, ग्रीवा, पीछे की ओर झुकी चिबुक और अलंकरणों से आच्छादित तंग कंचुली में आगे निकला वक्ष स्थल, क्षीणकटि एवं स्फूर्ति युक्त भाव–भंगिमाओं से युक्त चित्रित किया गया है।

2. झुकी पगड़ियां, लम्बे चाकदार जामें कमर पर पटका बांधे, चुस्त पाजामें में मेवाड़ी शैली के समकक्ष नीलवर्णी या गोरवर्णी पुरूष आकर्षक बन पड़े हैं।

3. सघन प्राकृतिक सुषमा के सुरमयी सतरंगी वैभव में समायोजित सफेद वास्तु यहाँ की मौलिकता है। गोल गुंबदाकार एवं घुमावदार राजस्थानी छतरियां एवं मुगलिया मेहराब आदि का मिश्रित रूप, भवनों के आन्तरिक भाग लाल–हरे रंग के रेशमी पर्दे, केले के कुंज, झरोखों से झाँकती नायिकाएँ, भवनों के खुले चौक आदि चित्रों की रूप–अंतराल व्यवस्था में विविधता और सम्पन्नता प्रस्तुत करती है। पशु–पक्षी चित्रण में शुक, मयूर, गिलहरी, बंदर, हाथी, शेर, घोड़े, सारस आदि का अंकन प्रचूरता से हुआ।

4. लाल–पीले, हरे एवं सफेद रंग की वर्ण संगति बूंदी शैली के चित्रकारों को अधिक प्रिय रही है। हरे रंग का बाहुल्य बूंदी में देखने को मिलता है।

5. रात्रिकालीन दृश्यों में नीले–काले आकाश में श्यामवर्णी बादलों के मध्य स्वर्ण व लाल रंग का स्पर्श चंचला की कौंध को प्रदर्शित करता है।

6. विषयवस्तु के रूप में बूंदी शैली में रागमाला एवं नायक नायिका भेद, बाहरमासा, षडऋतु वर्णन के रूप में शृंगार प्रधान विषयों का चित्रण राजस्थानी शैली की अन्य शैलियों की अपेक्षा अधिक हुआ है। रागमाला के चित्रों में छिन्न चित्र अधिक बने। इनके अतिरिक्त रात्रिकालीन शिकार दृश्य, उत्सव, शबीह चित्रण इस शैली के प्रमुख विषय रहे।

7. बूंदी शैली के प्रमुख चित्रकारों में सुरजन, किशन, साधुराम, रामलाल, अहमद अली का नाम विशेष रूप से आता है।

कोटा शैली :—

कोटा शैली 1952 ई. में प्रकाश में आयी। कर्नल टी. जी. गेयर एण्डर्सन द्वारा अपने निजी चित्र संग्रह को विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्युजियम लंदन को भेंट किया, तो उनमें से कुछ चित्र बूंदी शैली से भिन्न पाये गये। जिसके आधार पर बूंदी शैली की उपशाखा के रूप में कोटा शैली अस्तित्व में आयी। मुग़ल सम्राट शाहजहाँ द्वारा महाराजा माधोसिंह को भेंट स्वरूप हाड़ौती का एक हिस्सा जागीर के रूप में प्रदान किया, जो कालान्तर में कोटा के नाम से 1631 ई. में स्वतंत्र रियासत के रूप में स्थापित हुआ। कोटा चित्र शैली का इतिहास भी कोटा की स्थापना के साथ ही प्रारम्भ होता है। अर्थात 17वीं सदी के मध्य तक ही कोटा शैली अपनी शैलीगत मौलिकता ग्रहण कर पायी। कोटा के महाराजा रामसिंह 1669–1705 ई. और उनके पुत्र महाराव भीमसिंह 1705–20 ई. और उनके पश्चात महारावल उम्मेदसिंह के समय 1771–1820 ई. में कोटा शैली अपने चरमोत्कर्ष पर रही। इनके शासन काल में कृष्ण सम्बन्धी विषयों के अतिरिक्त शिकार के दृश्य अत्यधिक बने। (चित्र सं. 6)

चित्र संख्या–6 शिकार

बूंदी राज्य की भांति कोटा भी वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा। इस समय राधा–कृष्ण की लीलाओं का अंकन ओर सचित्र ग्रन्थों के निर्माण के अलावा भित्ति चित्रण की समृद्ध परम्परा विकसित हुई। 19वीं सदी के प्रारम्भ में पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय से संबंधित सचित्र ग्रन्थों में ''वल्लभोचद्रिका'' 1861 ई. तथा 'गीता पंचमेल' का काव्यात्मक चित्रण कोटा शैली के कलात्मक साक्ष्य हैं। कोटा शैली के चित्रण की यह परम्परा रावल रामसिंह के समय तक अर्थात 1866 ई. तक अनवरत यूं ही चलती रही किन्तु 1857 के गदर उपरांत पाश्चात्य प्रभाव ने कोटा शैली को अपनी प्रभावशीलता में ले लिया। तदुपरान्त कोटा शैली में मौलिकता का ह्रास होने लगा।

विशेषताएँ–

1. कोटा शैली में बूंदी शैली की झलक होते हुए भी कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो उसको मौलिकता प्रदान करती हैं जिसमें विशेषकर शिकार के दृश्य, सघन वन सम्पदा और पुरूषाकृतियों को बूंदी के विपरीत वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव स्वरूप आकृतियों को अंग प्रत्यंग गोस्वामियों और पुजारियों की भांति पुष्ट एवं भारी–भरकम देहयष्टी, दीप्तिमान चेहरे, मोटे उभरे नेत्र उठा हुआ ललाट, कोटा शैली में विशेषतः मिलते हैं।

2. कोटा शैली में शिकार के दृश्यों की अधिकता दृष्टव्य है। पृष्ठभूमि में सघन वन में विचरण करते शेर–चीते हाथी, हिरण और सूअर का अंकन प्रमुखता से हुआ है। सघन वनों से झांकते शिकार के बुर्ज वास्तु अंकन के अल्पता की महत्ता को ओर बढ़ा देते हैं।

3. रंग संगति में कोटा शैली के चित्रों में हरा, लाल एवं सुनहरी रंगों का प्रयोग अधिक हुआ है। हरे रंग की पृष्ठभूमि में गुलाबी–भूरे रंग का समन्वय कोटा शैली की नितांत नवीन संविधा को अभिव्यक्त करती है।

4. कोटा शैली में सचित्र ग्रंथों के अतिरिक्त भित्ति चित्रण परम्परा भी उन्नत रही। जिसमें झाला की हवेली, देवताजी हवेली और कोटा के राज प्रसाद इत्यादि प्रमुख हैं।

ढूंढाड शैली : 'जयपुर शैली'

जयपुर देश–विदेश में अपने नगर विन्यास, वास्तु सौन्दर्य एवं चित्रकला के लिए विश्व प्रसिद्ध है। महाराजा सवाई जयसिंह (1699–1743 ई.) द्वारा स्थापित जयपुर राजस्थान के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कच्छावा वंश की रियासत आमेर उत्तरकाल में जयपुर स्थानान्तरित हुई। 16वीं सदी में मुग़लों की अधीनता स्वीकारने और अकबर के साथ वैवाहिक सम्बन्धों के फलस्वरूप जयपुर के साथ मुग़लों के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे। महाराजा मानसिंह के मुग़ल साम्राज्य से अंतरंग सम्बन्धों के कारण जयपुर रियासत का कलात्मक विकास अधिकाधिक हुआ। 1600–1614 ई. तक आमेर के पास प्राप्त भित्ति चित्रण इस शैली के प्राचीनतम उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त बैराठ के बाग, मौजमाबाद की छतरियां, भारमल की छतरी, और अकबर कालीन रज्मनामा (1584–85 ई.) नामक सचित्र ग्रंथ जयपुर शैली की समृद्ध चित्रण परम्परा को रेखांकित करते हैं। (चित्र सं. 7)

जयपुर शैली के विकासक्रम का दूसरा चरण मिर्जा राजा जयसिंह (1625–67 ई.) से प्रारम्भ होता है। जिनके दरबार में बिहारी जैसे रीतिकालीन कवि राजा के दरबारी रत्न थे। 1787 ई. में राजा सवाई जयसिंह द्वारा जयपुर की स्थापना में कलाओं के उत्थान में भी विशेष योगदान दिया। इस समय की चित्रकला में लोक कला के स्थान पर मुगलिया प्रभाव युक्त कोमल एवं बारीक रेखांकन हल्की फीकी रंग संगति से युक्त संस्कृत एवं हिन्दी ग्रंथों का बाहुलता से चित्रण हुआ। सवाई जयसिंह के पश्चात महाराजा ईश्वरीसिंह के समय की चित्रकला के विकास में साहिबराम और लाल चितेरा नामक चित्रकारों का विशेष योगदान रहा। इनके समय में व्यक्ति चित्रण और पशुओं की लड़ाई के अनेक चित्र बने। उत्तरकाल के राजाओं में पृथ्वी सिंह, प्रतापसिंह और जगतसिंह के शासन काल अर्थात 1750–1820 ई. तक जयपुर कला धर्म और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बना रहा। इस समय के चित्रों में रीतिकालीन साहित्य एवं धर्म प्रधान विशयों का आधिक्य रहा। उपलब्ध चित्र साक्ष्यों में राधाकृष्ण के लीला चित्र, भागवत पुराण, दुर्गा सप्तशती, रागमाला, बाहरमासा, ऋतुवर्णन, नायक–नायिका भेद एवं राजसी जीवन और विशेषकर शबीह चित्रण में आदम कद चित्र प्रमुखता से बने। शृंगारिक पदों का अलंकारिक चित्रण जयपुर शैली में विशेष रूप से दिखायी देता है।

महाराजा रामसिंह के समय बढ़ते अंग्रेजी प्रभाव और फोटोग्राफी के अविष्कार के फलस्वरूप जयपुर शैली की चमक फीकी पड़ने लगी और 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जयपुर शैली ने अपनी रसमयी मौलिकता से विमुख होकर कम्पनी शैली के यथार्थवादी अंकन का हाथ थाम लिया। जयुपर शैली के अन्य

चित्र संख्या–7 गोवर्धन पूजा उपरान्त कृष्ण गाय चराने जाते हुए

कला केन्द्रों में उनियारा, टोंक, अलवर ओर शेखावाटी क्षेत्रों में भी कला का विशेष उन्नयन हुआ।

विशेषताएँ–

1. जयपुर शैली के चित्रों में पुरूषाकृतियाँ मध्यम कद–काठी, गोल चेहरा, उच्च ललाट, छोटी नासिका, मोटे अधर, मांसल चिबुक, मीनाकृत नयन, वस्त्राभूषणों में मुगलिया जामा, कमर पर पटका और पजामे से युक्त चित्रित की गयी हैं।

2. स्त्री आकृतियों को मीनाकृत नयन, लालिमायुक्त गोल चेहरे, उभरे हिंगुली अधर, कपोलों पर झूलती अलकें और मांसल यौवनी काया अलंकृत राजस्थानी मुग़ल मिश्रित वस्त्राभूषणों के साथ चित्रित किया गया है।

3. आकृति रचना में अंग–प्रत्यंग के उभार के लिए परदाज का काम जयपुर कलम की निजी विशेषता रही है। हाशियों में ईरानी प्रभाव लिए बेल–बूटे, फूल–पत्तियाँ और विभिन्न पशु–पक्षियों की आकृतियां सुसज्जित हैं।

4. रंग संगति में लाल, पीला और हरे रंग के अलावा हल्की रंग योजना में मुग़ल प्रभाव दृष्टिगत होता है। कालान्तर में स्वर्ण रंग की बहुलता के साथ–साथ माणक, पन्ना एवं मोती आदि रत्नों की चित्रों में आलंकारिक जड़ाई जयपुर शैली को निजत्व प्रदान करती है। हरे रंग का आधिक्य लिए चित्रों में चाँदी के रंग की पतली किनार से युक्त लाल–काले रंग के हाशिये प्रधानता से बने।

5. जयपुर शैली में अन्तराल व्यवस्था घटना के अनुरूप विकसित न होकर चित्र के ऊपर हिस्से को क्षितिज रेखा से विभाजित कर आकाश को नीले रंग में चित्रित कर घुमावदार बादलों के चित्रण का प्रचलन बढ़ा।

6. जयपुर शैली की विषयवस्तु में कृष्ण लीलाएँ, पौराणिक आख्यान, भागवत पुराण आदि पुराण, बिहारी सतसई, दुर्गा सप्तशती, बारहमासा, रागमाला दरबारी चित्रण, व्यक्ति चित्रण और पशु–पक्षियों की लड़ाई, स्त्री सौन्दर्य आदि का चित्रण प्रमुखता से हुआ।

7. जयपुर शैली के प्रमुख चित्रकारों में साहिबराम, लाल चितेरा, रामजीदास, घासीराम, रघुनाथ, गोविन्द, गोपाल, उदय, हीरानन्द, त्रिलोकचंद, सालिगराम, सेवकराम आदि ने जयपुर शैली की समृद्ध लघु चित्रण व भित्ति चित्रण परम्परा को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया।

राजस्थानी शैली की सामान्य विशेषताएँ :

16वीं सदी से 19वीं सदी तक विभिन्न शैलियों, उपशैलियों के रूप में विकसित राजस्थानी चित्रकला निश्चित ही भारतीय चित्रकला के इतिहास में लघुचित्रण परम्परा में अपना अलग स्थान रखती है। लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि राजस्थानी शैली ही परिवर्तन की प्रथम संवाहक बनी जिसमें साहित्य, चित्र, संगीत की त्रिवेणी को एक रूप प्रदान कर जन–सामान्य की भागीदारी सुनिश्चित की। विषय वैविध्य और रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रयोग से वैश्विक कला परिदृश्य में अपना वैशिष्टय रखने वाली राजस्थानी शैली अपनी समकक्ष शैलियों से प्रभावित होने के उपरांत भी अपने निजत्व को बनाये रखने में सफल रही। राजस्थानी शैली के विस्तृत अध्ययन से उसमें सामान्य विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं जो निम्न प्रकार हैं।

1. लोक जीवन का सानिध्य
2. भाव प्रधान
3. वर्ण वैविध्य
4. देशकला की अनुरूपता
5. प्राकृतिक परिवेश
6. विषय वैविध्य

1. लोक जीवन का सानिध्य : भित्तिचित्रण परम्परा और अपभ्रंश शैली से विकसित राजस्थानी चित्रकला का लोकजीवन से विशेष सानिध्य रहा है। प्रारम्भिक चित्रण में सादगी, सरलता और रंगों की अल्हड़ता एवं विषयवस्तु के चयन में लोक जीवन की भावनाओं का बाहुल्य उसके लौकिक प्रभाव को पुष्ट करती है। उत्तरोत्तर अवस्था में राज्याश्रय की प्रतिबद्धता और शास्त्रीय गुणों के विकास के उपरान्त भी राजस्थानी शैली से लोक कलागत तत्व अलग नहीं हो पाये। धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों में पोषित चित्रकला जन–जीवन की भावनाओं और सामाजिक विषयों से अधिक सबंद्ध रही।

2. भाव प्रधान : राजस्थानी चित्रकला रस प्रधान शैली है। भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण उसकी आत्मा है। राधा–कृष्ण की माधुर्य भावना के विस्तृत एवं गहनतम चित्रण के द्वारा चित्रकारों ने भौतिक जीवन की रागात्मक एवं आलौकिक जीवन की सात्विकता का सुन्दर समायोजन प्रस्तुत किया है अर्थात भक्ति और शृंगार का सजीव चित्रण राजस्थानी शैली की प्रधान विशेषता है।

3. वर्ण वैविध्य : राजस्थानी चित्रकला रंगों का काव्यात्मक स्पंदन है। इसमें रंगात्मक वैविध्य भावों की पुष्टी का आधार स्तम्भ है। चटकीला प्रभावोत्पादक रंग संयोजन इस शैली की पहचान है। जिसमें पीले, लाल, हरे, नीले, श्वेत, रंगों का आधिक्य क्षेत्रीय शैलीगत प्रभाव लिए प्रयुक्त हुआ है। उत्तरकाल में मुग़ल प्रभाव के परिणाम स्वरूप शैली में फीकी रंग संगति सुफियानापन लिए स्लेटी, गुलाबी, बादामी और फाख्तायी रंगों के रूप में अधिकता से दिखाई देती है।

4. देशकाल की अनुरूपता : राजपूती सभ्यता और संस्कृति के साथ तत्कालीन राजनैतिक–सामजिक परिस्थितियों के अनुरूप जीवंत चित्रण राजस्थानी चित्रकला की प्रधान विशेषता रही है। क्षेत्रीय विविधता एवं स्वतंत्र रियासतों में विकसित राजस्थानी शैली की विभिन्न चित्र शैलियां अपने आत्मगत स्वरूप में एक रूप जान पड़ती हैं। जहाँ सभी में विषयगत समानता चित्रण वैविध्य के साथ परिलक्षित होती है। दुर्ग, राजप्रसाद, मंदिर, हवेलियां आदि का राजस्थानी वैभव चित्रकला में बारीकी के साथ चित्रित हुआ वहीं मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की आधार भूमि और रीतिकालीन काव्य का सजीव चित्रण राजस्थान कला का प्राण तत्व है।

5. प्राकृतिक परिवेश : चित्रकला के क्षेत्र में प्रकृति का जितना विराट और वैविध्य पूर्ण चित्रण राजस्थानी शैली में हुआ है उतना विश्व की अन्य कलाओं में नहीं। कमल पुष्पों से ढ़के सरोवर, मेघों से आच्छांदित व्योम में सर्पाकार कौंधती चंचला, सघन वन, उपवन में क्रीड़ा करते पशु–पक्षी। निकुंजों में प्रेमालाप करते राधा–कृष्ण प्रकृति के अंग प्रत्यंग जान पड़ते हैं। सरोवरों में तैरती नौकाएँ, जलक्रीड़ा करते जलमुर्गे, बतख, सारस, चहकते मयूर, कोयल, हाथी, शेर, ऊंट, घोड़ों आदि का चित्रण इस शैली का निजत्व है।

6. विषय वैविध्य : शायद उपरोक्त वर्णित विशेषताएँ विश्व की अन्य चित्र शैलियों में भी आंशिक रूप से दृष्टिगत हो सकती हैं लेकिन चित्रों के विषय चयन में विविधता राजस्थानी शैली को सभी कला शैलियों से अलग खड़ा करती है। विषयगत विस्तार की दृष्टि से राजस्थानी शैली में सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजसी सभी संदर्भों को समान रूप से रेखांकित किया गया है।

धार्मिक चित्रों में रामानुजीय सम्प्रदाय एवं वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बंधित चित्रों में कृष्ण लीलाएं, महाभारत, भागवत पुराण, गीत गोविन्द, सूरसागर, आर्ष रामायण, शिवपुराण, दुर्गा सप्तशती, बालगोपाल स्तुति आदि ग्रन्थों पर आधारित चित्रण हुआ। वहीं सामाजिक संदर्भों के तहत सामाजिक उत्सवों, राजसी वैभव–विलास, व्यक्ति चित्रण, लोक कथाओं एवं प्रेम आख्यानों का चित्रण अधिक हुआ। लेकिन इन से बिल्कुल विपरित जिस विषय–वस्तु के कारण राजस्थानी चित्रों को ख्याति मिली वो हैं श्रृंगार प्रधान चित्र। अर्थात रीतिकालीन साहित्य आधारित विषयों के अन्तर्गत बारहमासा, षडऋतु वर्णन, नायक–नायिका भेद और संगीत आधारित रागमाला के चित्र।

राजस्थानी शैली में श्रृंगार विषयक चित्रों के माध्यम से मानव एवं प्रकृति के अंतःसंबंधों को उजागर करने वाले उन मनोवैज्ञानिक पहलुओं का चित्रण है, जो मानव की रागात्मक प्रवृत्ति के आदिम स्रोत है। इसके अतिरिक्त रागमाला चित्रों के माध्यम से संगीत जैसी अमूर्त विद्या को मूर्तरूप देने का श्रेय राजस्थानी शैली के चित्रकारों को जाता है। राग–रागिनी के संदर्भ में सर्वप्रथम व्यवस्थित अध्ययन हमें गुरू अर्जुनदेव रचित गुरूग्रंथ साहिब (1581–1605 ई.) में मिलता है। इसी को आधार बना कर रागमाला चित्रों की रचना प्रारम्भ हुई। रागशब्द की उत्पत्ति, एवं रागिनी का जन्म, और स्वरों या राग विशेष के लक्षणों अनुसार पशु–पक्षियों या किसी अन्य तरह के प्रतीकों के साथ उनका सामंजस्य बिठाना और उनके अनुरूप नायक–नायिका का राग–रागिनी से सम्बंध स्थापित कर उसके भाव रस एवं गायन समय आदि सब मिलाकर रागमाला के चित्रण करना प्रतीकों के निर्धारण के पश्चात ही संभव हो सका– जिसमें राजस्थानी शैली ने अपनी सिद्धहस्तता साबित की।

''रागमाला'' जैसे शब्द से ही स्पष्ट है 'स्वरों की श्रृंखला' जिसमें ताल की प्रवृत्ति का शक्तिशाली और कमजोर होना उसके लिंग का निर्धारण करता है अर्थात राग की आरोह अवस्था (उठाव–शक्तिभ) राग के पुरूष तथा अवरोह अवस्था (कोमल–निम्न) स्त्री राग अर्थात रागिनी का रूप धारण करती है। राजस्थानी चित्रकला में छः राग और छत्तीस रागिनियों का विवरण देखने को मिलता है जो इस प्रकार है –

1. भैरव राग 2. श्री राग 3. मालकोश

4. मेघमल्हार 5. राग दीपक 6. राग हिण्डौल।

उपरोक्त छः रागों में प्रत्येक राग की छः–छः स्त्री रागिनी रूप का विवरण दृष्टव्य है अर्थात रागमाला में लय को रंगों के माध्यम से गति चित्रों में समायोजित कर प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गयी।

बारहमासा एवं षडऋतु वर्णन–भारतीय सौन्दर्य शास्त्रीय अवधारणा की पूर्ण सफलता हमें राजस्थानी शैली के रस चित्रों में देखने को मिलती है। रीतिकालीन साहित्य मे बिहारी सतसई, केशव की रसिक प्रिया, मतिराम का रसराज और भानुदत्त की रस मंजरी को आधार बनाकर श्रृंगार रस से परिपूर्ण चित्रों की रचना बारहमासा, नायक नायिका भेद और षडऋतु वर्णन में की गई।

बारहमासा चित्रों में प्रकृति के मौसम चक्र के अनुरूप बारह महिनों के बदलते प्राकृतिक स्वरूप और उनका मानव प्रवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है जो षडऋतु वर्णन एवं नायक–नायिका भेद चित्रों में भी दृष्टिगोचर होता है अर्थात नायक–नायिका भेद, बारहमासा और षडऋतु वर्णन यह तीनों ही विषय मानव की भावभूमि से संबद्ध होने के कारण अर्न्तसम्बद्ध हैं। बारहमासा चित्रण में हिन्दू पचांग के बारह महिनों, जिसमें – चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन है। बारहमासा चित्रों में श्रृंगार की वियोगावस्था का चित्रण है। वहीं षडऋतु वर्णन में संयोगावस्था का चित्रण है।

षडऋतु चित्रण में प्रमुखतः छः ऋतुएँ मानी हैं – बसंत (ऋतुराज), ग्रीष्म, हेमंत, वर्षा, शिशिर, शरद। उपरोक्त ऋतुओं में नायक–नायिका को चित्रित किया गया है।

राजस्थानी शैली के प्रमुख चित्र :–

बणी–ठणी :–भारत की मोनालिसा कहलाने वाला यह चित्र किशनगढ शैली की देन है। चित्रकार निहालचंद द्वारा अंकित यह चित्र राजस्थानी शैली का श्रेष्ठ चित्र है। बणी–ठणी का शाब्दिक अर्थ होता है सजी–धजी। यह चित्र वास्तव में अपने शीर्षक को साकार करता है । यह चित्र बणी–ठणी को भारत की मोनालिसा की संज्ञा एरिक डिक्सन ने दी। बणी–ठणी राजस्थान के किशनगढ़ रियासत के तत्कालीन राजा सांवत सिंह की दासी व प्रेमिका थी। बणी–ठणी सौंदर्य की अदभुत मिसाल होने के साथ ही

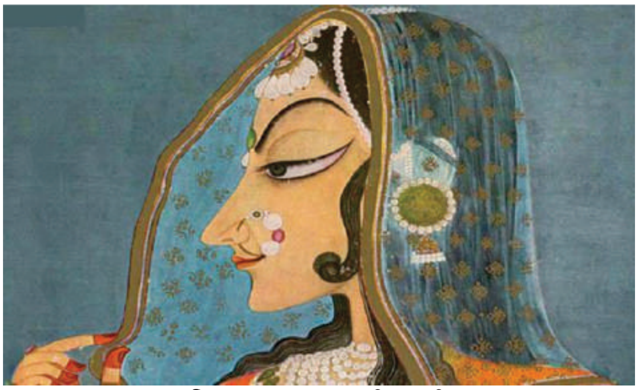

चित्र संख्या–8 बणी–ठणी

उच्च कोटी की कवयित्री व गायिका थी। यह स्वयं रसिक बिहारी के नाम से कविता करती थी। ।इस चित्र का चित्रण लगभग संवत 1755 से 1757 में हुआ, इस चित्र का आकार 48.8 गुणा 36.6 सेमी है। वर्तमान में बणी–ठणी का चित्र अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित है व इसकी एक प्रति अल्र्ब्ट हॉल पेरिस में सुरक्षित है। 5 मई 1973 को बणी–ठणी चित्र पर भारत सरकार के डाकविभाग द्वारा डाक टिकट भी जारी जारी किया गया। इस चित्र में अंकित नारी लज्जा युक्त, मधुर मुस्कान, तीखे नाक, कर्णांत कमल नयन व सुकुमार अंगुलियों के साथ सुन्दर वस्त्राभुषणों से सजी अत्यंत आकर्षक है।

ढोला–मारु (मारवाड) :– मारवाड की प्रसिद्ध प्रेम गाथा पर आधारित चित्र 'ढोला–मारु' जोधपुर शैली का प्रसिद्ध चित्र है। राजस्थान की लोक कथाओं में बहुत सी प्रेम कथाएँ प्रचलित है पर इन सबमे ढोला मारू प्रेम गाथा विशेष लोकप्रिय रही है इस गाथा की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आठवीं सदी की इस घटना का नायक ढोला राजस्थान में आज भी एक–प्रेमी नायक के रूप में स्मरण किया जाता है और प्रत्येक पति–पत्नी की सुन्दर जोड़ी को ढोला–मारू की उपमा दी जाती है। लोक आख्यानों में पूगल की राजकुमारी मारू या मरवण को अप्रितम सौंदर्य की धनी बताया जाता है–

नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमळी सुकच्छ।
गोरी गंगा नीर ज्यूँ , मन गरवी तन अच्छ।।

चित्र में ऊंट पर सवार ढोला–मारू को अंकित किया गया है। कथानक के अनुसार ढोला मरवण यानि मारु को पूगल से अपने राज्य नरवर लेकर जा रहा है। चित्र में ऊंट की गति व ढोला का पराक्रम व मरवण का सौंदर्य अद्‌भुत है। (चित्र सं. 9) सरल पृष्टभूमि धूसर रंगों से अंकित है वहीं ढोला–मारू का चित्रण उष्ण रंगों से हुआ है।'

चित्र संख्या–9 ढोला मारू (जोधपुर)

चित्र संख्या–10 गौधूलि

ढोला–मारु' का यही कथानक मेवाड शैली में चित्रकार साहबदीन द्वारा भी किया गया है जो की दो खण्डों में विभक्त है। उपरी भाग में एक तम्बू में लाल कालीन पर ढोला–मारू को आमने सामने बैठे बनाया गया है। ढोला को कलंगीदार पगडी व अस्त्र–शस्त्र धारण किए बनाया गया है तथा मारु को पीला लहंगा और बैंगनी चुनरी औढे दर्शाया गया है। नीचे के भाग में मारु एक ऊंट के पास कुछ कहने की मुद्रा में खडी है।

गौधूलि (मेवाड़) :– मेवाड़ शैली में चित्रकार चौखा द्वारा चित्रित यह दृश्य आकर्षक संयोजन व सौम्य रंगयोजना के लिए जाना जाता है । इस चित्र का निर्माण लगभग 1813 ई में हुआ महाराणा भीम सिंह के समय हुआ। चित्र में गौधूलि वेला (गायों के घर लौटने का समय) में बाल कृष्ण अपने सखाओं के साथ गायें लेकर वापिस नगर में प्रवेश करते अंकित हैं। अटारी से माताएं अपने बच्चों को देख प्रफुल्लित हो रही है। बालक भी अपनी माताओं को देखकर उनकी और इशारा कर हर्षित हो रहे हैं। एक साथ बड़ी संख्या में गायों के चलने से उठ रही धूल दर्शाने के लिए पूरा वातावरण मटमैला बनाया गया है। चित्र की पृष्ठ भूमि में प्रकृति का सुरम्य अंकन हुआ है ।

दीपक राग (बूंदी) :– राव रतन सिंह के समय चित्रित रागमाला चित्रावली बूंदी चित्रशैली के श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है। इस रागमाला चित्रावली को चित्रकार हुसैन, अली व हातिम द्वारा 1591 ईस्वी में तैयार किया गया माना जाता है। इस संग्रह में राग दीपक एक महत्वपूर्ण चित्र है। इसमें नायक–नायिका को महल में प्रेम मग्न बनाया गया है। चित्र में वास्तु व प्रकृति का बूंदी शैली के अनुरुप अंकन हुआ है। आसमान में रात्रि भाव के लिए गहरा रंग भरा गया है। तारों की टिमटिमाहट मोहक है। वस्त्राभूषण सुन्दर हैं। 26 गुणा 16 सेन्टीमीटर आकार का यह चित्र भारत कला भवन वाराणसी में संकलित है।

विष्णु–लक्ष्मी(बीकानेर) :–प्रसिद्ध चित्रकार हामिद रुकनुदीन द्वारा चित्रित विष्णु–लक्ष्मी बीकानेर शैली के महत्वपूर्ण चित्रों में से एक है। रुकनुदीन मुगल चित्रकार अली रजा का शिष्य था । इस चित्र में स्वर्ण आसन पर भगवान विष्णु व श्री लक्ष्मी को विराजमान बनाया गया है। उनके चारों ओर ग्यारह परिचारिकाएं अंकित हैं जिनके हाथों में विभिन्न वस्तुएं हैं। यह

चित्र संख्या–11 विष्णु– लक्ष्मी

चित्र बीकानेर शैली का परिष्कृत स्वरुप दर्शाता है । पार्श्व में अंकित आर्च, वस्त्रों की सिलवटें व सुनहरे रंग का अद्भुत प्रयोग आकर्षक है। पृष्ठभूमि में हल्का नीला रंग प्रयुक्त है। रेखांकन महीन व स्तरीय है। चित्र का सम्पूर्ण वातावरण मन मोहक है, हालांकि चित्र मुगल शैली से प्रभावित हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थानी चित्रकला का उद्भव एवं विकास 16वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य अपभ्रंश शैली के प्रभाव से मेवाड़ शैली के रूप में हुआ।

2. राजस्थानी शैली का उन्नयन राजस्थानी की विभिन्न रियासतों के अनुसार हुआ विभिन्न शैलियों का क्षेत्रीय विभाजन–

(1) मेवाड़ शैली (2) मारवाड़ शैली (3) हाड़ौती शैली (4) ढूँढार शैली

3. सभी शैलियां आकृति अंकन एवं प्राकृतिक अंकन में क्षेत्रीय भौगोलिक प्रभाव का वैविध्य लेकिन विषयागत समानता सभी की सामान्य विशेषता है।

4. राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख शैलियों का शैलीगत वर्गीकरण

(1) मेवाड़ शैली – उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़

(2) मारवाड़ शैली – जोधपुर, सिरोही, नागौर, घाणेराव (पाली)

(3) बीकानेर शैली

(4) किशनगढ़ शैली

(5) कोटा शैली

(6) बूंदी शैली

(7) जयपुर शैली – उनियारा, टोंक

(8) अलवर शैली

5. विषयवस्तु में कृष्ण लीला सम्बन्धी विषय, रागमाला, बारहमासा, नायक–नायिका भेद, ऋतुवर्णन, संस्कृत एवं रीतिकालीन साहित्य और राजसी दरबारी जीवन का चित्रण अधिकता से हुआ।

6. रंग संगति में लोक शैली के समान चटक रंगों का प्रयोग जिनमें लाल, नीले, हरे, पीले, श्वेत रंगों की प्रधानता किंतु उत्तरकाल में मुग़ल प्रभाव के कारण हल्की रंग संगति का समावेश।

7. अधिकतर चित्र कागज़, कपड़े और राजप्रासादों की भित्तियों पर बने हैं।

8. राजस्थानी शैली की सामान्य विशेषताएँ :–

(1) स्वतंत्र चित्रण

(2) भाव प्रवणता लिए शारीरिक सौन्दर्य का सृजन

(3) लयात्मक ओजपूर्ण रेखांकन

(4) चमकीली चटक रंग योजना

(5) घटना अनुरूप संयोजन (अन्तराल व्यवस्था चित्रतल के अनुरूप)

(6) क्षितिज रेखा सदैव चित्रतल में ऊपर की ओर

(7) प्रकृति सम्पुजन विराट एवं प्रतीकात्मक रूप में

(8) वास्तुचित्रण में राजस्थानी और मुगलिया मिश्रित शैली में

(9) विषयवस्तु में धार्मिक, सामाजिक, राजसी एवं रीतिकालीन संस्कृत एवं हिन्दी ग्रन्थों को सचित्र रचना।

(10) हाशिये सादगी पूर्ण उत्तरकाल में अलंकरण लिए हुए।

विशेष अध्ययन– कक्षा अध्यापक संदर्भ ग्रन्थ की सहायता से सभी राजस्थानी शैलियों के तीन प्रमुख चित्रों का विस्तृत कलात्मक विवेचना छात्रों को करावें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी शैली का उद्‌भव और विकास किन शैलियों से माना जाता है?
2. राजस्थानी शैली की विभिन्न शैलियों के नाम लिखो?
3. मेवाड़ शैली के सचित्र ग्रन्थों में तीन के नाम लिखो?
4. मेवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकार कौन–कौन से थे? नाम लिखो।
5. मारवाड़ शैली की प्रमुख उपशैलियाँ कौन–कौन सी है?
6. मारवाड़ शैली के प्रमुख चित्रकार कौन–कौन से थे?
7. राजस्थानी चित्रकला में कौनसी क्षेत्रीय शैली प्रांतीय मुग़ल शैली के नाम से जानी जाती है। उससे जुड़े चित्रकारों के नाम लिखो?
8. बूंदी शैली के प्रधान विशेषता क्या रही?
9. समृद्ध भित्ति चित्रण परम्परा और शिकार के दृश्यों का चित्रण किस शैली में अधिकता से हुआ।
10. राजस्थानी शैली की प्रधान विषय वस्तु क्या रही?
11. नागरीदास सावंतसिंह के द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखो।
12. किशनगढ़ शैली के चित्रकारों के नाम लिखो?
13. जयपुर शैली में भित्ति चित्रण के उदाहरण कहाँ मिलते हैं।
14. रागमाला चित्र सर्वाधिक किस शैली में और किसके शासन काल में बने?
15. 'रसराज' और 'बिहारी सतसई' नामक ग्रंथों के लेखक कौन है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी शैली के उद्‌भव एवं विकास पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये।
2. मेवाड़ शैली की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालो।
3. मारवाड़ शैली में प्रयुक्त विषय वस्तु को संक्षेप में बताइए।
4. किशनगढ़ शैली के चित्र बणी–ठणी में प्रयुक्त नारी सौन्दर्य की कलात्मक व्याख्या कीजिये।
5. जयपुर शैली की भित्तिचित्रण परम्परा पर प्रकाश डालिये।
6. मेवाड़ शैली में रचित सचित्र ग्रन्थों के बारे में बताइये।
7. बीकानेर शैली पर मुग़ल प्रभाव को रेखांकित कीजिये।
8. बूंदी शैली के रागमाला चित्रों पर टिप्पणी कीजिये।
9. राजस्थानी शैली पर प्रधान विशेषताएं क्या हैं लिखिये।
10. राजस्थानी शैली की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी चित्रकला के शैलीगत विकास क्रम को विस्तार से समझाइये।
2. मेवाड़ शैली के उद्‌भव और विकास को रेखांकित करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. किशनगढ़ शैली में प्रयुक्त कृष्ण विषयक चित्रों की व्याख्या करते हुये राजस्थानी शैली में इसके महत्व को समझाइये।
4. जयपुर शैली पर एक निबंध लिखिए।
5. राजस्थानी चित्रकला में प्रयुक्त विषय वस्तु में विशेषतः रागमाला, बारहमासा, षडऋतु चित्रण एवं नायक–नायिका भेद चित्रों की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।